बर्फ पर नंगे पाँव

1992-80

महाराज कृष्ण संतोषी

बर्फ पर नंगे पांव की कविताएँ प्रकृति, प्रेम, कश्मीर की स्मृतियों और आज के जीवन की विसंगतियों से अनुप्राणित हैं। विषय के अनुरूप भाषा सहज एवं प्रवाहमयी है।

महाराज कृष्ण संतोषी का यह दूसरा कविता-संग्रह है। कश्मीर के हिन्दी-कवियों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहां की मिट्टी की गंध, हरियाली, ऊष्मा और वैभव उनके काव्य की विशेषताएं हैं।

बर्फ पर नंगे पांव में जहां एक ओर आज के मानव मन की विभिन्न अनुभूतियों का पारदर्शी चित्रण है, वहीं दूसरी ओर इस कविता-संग्रह के कश्मीर विषयक स्मृति-खंड में ऐसी कविताएं हैं जो कश्मीर से विस्थापित होने के पश्चात् उनके कवि मन से निसृत हुई हैं और एक जीवंत आलेख में बदल गईं हैं।

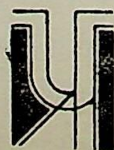
इस कविता-संग्रह से युवा हिन्दी कविता समृद्ध हुई है।

बर्फ
स्मृ
अनु
प्रव

मह
है
स्थ
अ

ब
म
दू
ख
ह
ए

बर्फ पर नंगे पाँव



पल्लवी प्रकाशन, दिल्ली-१२

बर्फ पर नंगे पाँव

महाराज कृष्ण संतोषी

मूल्य : पचास रुपये/प्रथम संस्करण : १९९२/आवरण-शिल्पी : हरिप्रकाश त्यागी/
प्रकाशक : पल्लवी प्रकाशन, ए-३५, निर्माण विहार, दिल्ली-११००९२/
मुद्रक : पार्वती प्रिंटर्स, कल्याणपुरी, दिल्ली-११००९१

BARPH PAR NANGE PANV : Maharaj Krishna Santoshi
Rs. 50.00

अरुण, नीरज और प्राण के लिए

क्रम

कील : दो कविताएं

कील : एक

मैं हूं कील
छोटी सी
मगर
बड़े-बड़े लोगों के
लबादे
टांगने का हौसला
रखती हूं ।

कील : दो

कील पर टंगी
कमीज़
स्वप्न देखती है
अभी-अभी कोई आदमी
उसे पहनकर
दुश्मनों के शिविर में गया है

डर जाती है कमीज़
नींद में ही
कील पर टंगी
दूसरी कमीज़ों को
पुकारने लगती है
क्या उन्होंने भी
ऐसा ही स्वप्न देखा ?

दस्ताने

कविता बोली—
मुझे कैसे लिख पाओगे
जब तक इन दस्तानों में
हाथ अपने रखोगे !

धरती ने कहा—
कैसे अनुभव कर सकोगे
मेरी गुदगुदी
इन दस्तानों में !

रक्त में डूब रहे
शब्द ने भी चिल्लाकर कहा—
सिर्फ नाखून ही नहीं छिपाते,
जासूसी भी करते हैं दस्ताने !

कहा
हवा के एक झोंके ने—
दस्तानों का कोई भरोसा नहीं
ये कब सोख लें हाथों का रक्त
कुछ पता नहीं

मैं हैरान हूं
दस्तानों के खिलाफ़
केवल हाथ ही क्यों नहीं बोलते !

गिद्ध

गिद्ध का कोई
निश्चित आकार नहीं होता
और न ही सदा मांस नोंचने
वह आकाश से धरती पर उतरता है

गिद्ध का कोई
मौसम भी नहीं होता
नहीं कोई खेत
नहीं कोई फसल
नहीं कोई घर
गिद्ध हमारे मरने का
इंतज़ार कर रहा होता है

गगन में उड़ते पंछियों में
सबसे बड़ा होता है गिद्ध
और कितनी छोटी बेचारी चिड़िया

गिद्ध हंसता है
जब टूटता है हमारा मनोबल
जब बूंद-बूंद रिसती है हमारी शक्ति
जब टिमटिमाने लगती है
आंखों की हमारी लौ
जब काया अपनी गति
खोने लगती है
गिद्ध हंसता है

गिद्ध के सामने
खड़े रहो
हाथ-पांव हिलाओ
चीखो
न हो कोई गीत कंठस्थ
कोई तेज़ गाली ही बोलो
गिद्ध के सामने
निष्चेष्ट मत पड़े रहो।

धागा कातने वाली बहन

धरती ने मुझे दिया कपास
बढ़ई ने चरखा
समय ने गाने को दिए दर्द

मां से मैंने कातना सीखा
कातने की धुन में
मैं भूला
ईश्वर के नाम की तमाम पोथियां

गहुत लीन था मैं
कातने में
कि एक दिन मेरे मित्र ने
माइकेल एंजिलो की बहनों के विषय में
बता दिया मुझे

उस रात सपने में मेरे पास
धागा कातने वाली बहन आई
उसने छुआ मेरा धागा
कहा
परस्पर लड़ती हुई इस दुनिया के लिए
आखिरी उम्मीद है धागा

मैंने चूमा बहन का हाथ
महीन कातने वाली
उसकी उंगलियों को
देर तक सहलाता रहा

टूटा सपना
अनकहा ही रहा
मैंने तो चाहा था कहना
मेरी बहन
हर बार मेरा ही धागा
टूट क्यों जाता है

लेकिन फिर कभी
मेरे सपने में नहीं आई बहन
क्या तुमने उसे मना कर दिया है,
माइकेल एंजिलो !

धागा तोड़ने वाली बहन

धागा तोड़ने वाली बहन
क्या तुमने कभी
बच्चों को पतंग उड़ाते हुए देखा है

पतंग उड़ाते हुए ये बच्चे
कैसे अपने आप
घृणा करने लगते हैं / बौनेपन से
कभी अनुभव किया है
कैसे सिर्फ एक धागे के बल पर
पतंग उड़ाते हुए ये बच्चे
तेज़ हवाओं से डरना
छोड़ देते हैं
कभी जाना है तुमने

तुम इसी तरह
तोड़ती रहीं धागा
तो एक दिन
इन बच्चों की पतंगों में
कहां से जोड़ेंगे इतना धागा हम
कभी सोचा है
धागा तोड़ने वाली बहन ।

धागा बचाने वाली बहन

ज़ख्म सीने तक के लिए
जब कम पड़ रहा हो धागा
ऐसे में कितना बड़ा दायित्व
आ पड़ा है
माइकेल एंजिलो
धागा बचाने वाली मेरी इस बहन पर।

अप्सराएं

अप्सराओं के विषय में
बहुत कहते हैं वे
वेश्याओं के बारे में
चुप क्यों हैं धर्मगुरु

कोठों पर नहीं होतीं
अप्सराएं
वे होती हैं ईश्वर के पास
भक्तजनों के लिए आरक्षित

वेश्याएं कीचड़ होती हैं
छींटे तो लग ही जाते हैं
वेश्याओं के साथ
हज़ार तरह की बातें
घटित होती हैं

अप्सराओं पर कोई प्रतिबन्ध नहीं
वे स्वप्नों में आएँ
या जीवन में
स्वागत उनका
वे आकाश मार्ग से आएँ
या थल मार्ग से
वे बस आएँ
धर्मगुरुओं के ध्यान में
तप में, मनन में
भरपूर सहयोग दें उनका ।

रीछ

नहीं जानता
आईने में अपनी सूरत देख
क्या कुछ होता होगा रीछ !
बस जानता हूँ इतना
आईने की आदत है
वह रीछ को रीछ ही दिखा देता है

पंजों में गर्दन दबोचे
मुंह रक्त से लथपथ
नथुनों में मादा बू की हलचल लिये
किसी सुखद क्षण की कल्पना में
जब हो जाता है आत्मलीन रीछ
उसके सामने मत रख देना
कोई तर्क
कोई विचार
सौन्दर्यबोध की कोई किताब

रीछ देखना चाहता है
प्रतिदिन
सूर्योदय के बर्तन में
लाल-लाल खून
अंधेरों के घास पर
महसूसना चाहता है
आलिंगन में एक साबुत देह
और इच्छाओं के बीहड़ वनों में
जब वह उतर आता है
ज़िन्दगी के मकई खेतों में

और हो जाता है तृप्त
रीछ गुनगुनाने लगता है
प्रार्थनाओं के कंठस्थ
कुछ अधूरे भजन !
मस्त होकर
किसी सख्त चट्टान पर
देखने लगता है राजा का ख्वाब ।

(वैसे अफवाह है)
रीछ लोकतांत्रिक हो गया है
और यह तय है कि एक दिन
वह तुम्हारे पास आएगा
तुमसे मांगेगा समर्थन
चाहे कुछ भी हो
रीछ को भीतर मत आने देना
खरखरे की उम्मीद में
मत बढ़ाना अपनी पीठ
मत चाटने देना
अपनी आत्मा का नमक

बस सोचना
क्या रीछ सिर्फ एक जानवर है ?

अधिकार

पेड़
हवा के वार्तालाप में
पेड़ को झकझोर तो सकती है
हवा
किन्तु असहमति में
अपने पत्ते गिराने से
क्या पेड़ को रोक सकती है !

तारा

अतीत में
खुलती है एक खिड़की
उस खिड़की में से
झांकता है एक बच्चा
हाथ में दूरबीन लिये

असंख्य तारों में से
एक तारा
बच्चे की आंखों में
टिमटिमाने लगता है

हर रात
अपनी दूरबीन से
उस तारे को
अपने निकट लाने का
प्रयत्न करता रहता है बच्चा

कभी नहीं मिलते
बच्चा और तारा ।

सौतेलापन

जिन बच्चों की
मांएं नहीं होतीं
वे ठंड में
कितना स्मरण करते हैं
अपनी मांओं को

वे बच्चे
सौतेलेपन की हर भाषा से
बहुत दूर
स्वेटर बुनती हुई औरतों के
ऊनी गोलों में
अपनी मां के दूध से भरे स्तन
देखते हैं।

वंशज

उन्होंने
उतार लिये मेरे कपड़े तक
फिर हाथ में देकर
लुकाठी
कहा—
जा अब फूंक अपना घर ।

सालिम अली

कई दिनों से
न उसने
चुगा दाना
न पिया जल
न चखा फल

कहते हैं गांव के बूढ़े
चिड़िया
बावरी हो गई है
जब से नहीं रहे
सालिम अली।

सुई

सुई
दर्ज़ी के हाथ में रहे
या किसी और के
कहीं भी पथभ्रष्ट नहीं होती

वह केवल
लिबास ही नहीं सीती
उन पर इच्छाएं भी काढ़ती है
सपने भी जोड़ती है

वह आदमी को
हत्यारा नहीं
कारीगर बना लेती है

वैसे किसी से
कुछ भी नहीं कहती सुई
मगर जब डींगें मारने लगते हैं चाकू
वह चुप नहीं रह पाती
चुभने लगती है चमड़ी में
जहां बची होती है
थोड़ी-सी संवेदना ।

अंतिम पत्ता

पेड़ से
अंतिम पत्ता भी
जब टूट रहा था
न रो रहा था
पत्ता
न पेड़ ही था
उदास।

पेड़

पेड़
चाहे वह जंगल में हो
या सड़क किनारे
यह तय है
जिसकी जड़ें
जितनी गहरी हों
वह उतने अधिक आघात
झेल सकता है ।

ताप सहना ही तो

सूरज ने बर्फ़ से कहा
अरी शिखर पर
तू कर रही है क्या
आ, मैं तुझे झरना बना दूं

बर्फ़ सहमत हो गई

धीरे-धीरे सूरज
सहलाने लगा
बर्फ़ की देह
फिर अपने प्रखर ताप से
उसे झकझोरने लगा
कांप गई बर्फ़
कहा सूरज से—
यह कैसा है तुम्हारा प्यार
खंडित हो गई हूं
तुम्हारे ताप से

बोला सूरज—
डर मत री पगली
ताप सहना ही तो
झरना बनना होता है ।

आना तुम

आना तुम कि जैसे
मानसूनों के साथ आती हैं फुहारें
कि तुम वह वर्षा हो मेरे लिए
जिसे मैं अपनी जड़ों तक
ले जाना चाहता हूं

आना तुम कि जैसे
युद्ध से लौटे किसी सैनिक के पास
आती है उसकी प्रेमिका
आना तुम कि जैसे
निर्वासित किसी कवि के पास
आती हैं उसके वतन की स्मृतियां

आना तुम कि जैसे
खेतों में खड़े
गन्ने के पौधों में
आती है मिठास
कभी न अलग होने के लिए ।

बारिश में

बारिश में
मैं चाहता हूं
कमरे में ही छोड़कर यह ज़िन्दगी
खुद को रोपूं
बाहर कहीं खुले में
एक पेड़ की तरह
और झेलूं पत्ती-पत्ती बारिश

मगर अकसर
बारिश में अनचाहे
मेरे सामने खुल जाता है
एक छाता फटा-फटा-सा
जिसके नीचे सिमट कर
मेरी पूरी ज़िन्दगी
कहीं दूर निकलना चाहती है
और कुछ समय निश्चिन्त होकर
आत्मा में चुभी कीलों को
एक-एक कर निकालना चाहती है
कि बहुत-बहुत काटने लगा है
आत्मा का यह बेचारा जूता।

नदी : तीन कविताएं

१

कैसा अद्भुत है
नदी
अपना मैल नहीं धो सकती
किन्तु मैल के भय से
नदी अपना
बहना नहीं छोड़ती।

२

किसी की नहीं होती नदी
न पहाड़ की
न गांव की
न शहर की
न देश की
किन्तु जहां-जहां से भी गुजरती है
वहीं की हो जाती है नदी
फिर भी अपने में स्वतन्त्र
अपने में सम्पूर्ण होती है नदी

३

खेत सींचने के लिए
नदी
पहाड़ों पर
बर्फ़ पिघलने का
इंतज़ार नहीं करती।

मौसम

मकानों की
कांच टूटी खिड़कियों के पास
खड़े होकर
तुम्हें मौसम का पता चल जाएगा

कड़ी धूप
या तेज बौछारें
महज़ औपचारिकताएं हैं
भौगोलिक सिद्धान्तों के
दरअसल अब मौसम
राजनेताओं के हस्ताक्षरों से
बदलते हैं !

सुख

बर्फ़ पर
उंगलियों से लिखी
इबारत-सा
कितना अस्थायी होता है
सुख
जो सूरज निकलते ही
अक्षर-अक्षर पिघल जाता है ।

आता रहेगा कौवा

डराने और कोसने के बावजूद
बार-बार तुम्हारे दिल की मुंडेर पर
आता रहेगा कौवा
अपने रंग से याद दिलाता हुआ
वह कोयला
जो आग पकड़ लेने से पहले
कितना कुरूप लगता है

दरअसल लपटों के बीच
वह तुम्हें हवाओं से
बातें करते हुए
सुनना चाहता है

वह अपनी चोंच से
तुम्हारे घावों को
बार-बार लहूलुहान करता रहेगा
दर्द की वर्षा में
लगातार खड़ा रखते हुए
वह तुम्हें हरियाली का विस्तार
देना चाहता है

समय-असमय अपनी कांव-कांव से
वह तुम्हें सतर्क करता रहेगा
कि लाठी काफी नहीं है
ऊंची खड़ी घास में छिपी सांसों के लिए

प्रत्येक मैथुन के बाद
बेतरतीब तुम्हारी मुद्रा पर हंसेगा वह

तुम्हारी सम्पूर्ण प्रेम भाषा पर
बीट करते हुए

डराने और कोसने के बावजूद
बार-बार तुम्हारे दिल की मुंडेर पर
आता रहेगा कौवा
अपने रंग से
अपनी चोंच से
अपनी कांव-कांव से
अपनी बीट से
तुम्हें स्मरण दिलाता रहेगा
कि तुम पूरी तरह कभी कूदे ही नहीं
न आग में
न युद्ध में
न प्रेम में
न भोग में

उजाले के किसी टुकड़े पर
पांव रखते हुए
वह कूजता रहेगा
तुम्हारे जीवन का द्वन्द्व

डराने और कोसने के बावजूद
आता रहेगा कौवा
चुगता रहेगा
तुम्हारी धड़कनें
पीता रहेगा
तुम्हारी आत्मा के निकट का जल

वह रहेगा उपस्थित
तुम्हारे ही भीतर
तुम्हारी ही ऊर्जा से प्रेरित
उसे भगा नहीं सकोगे तुम !

अयोध्या

हर दशहरे
भस्म होंगे रावण
लौट आएंगे घर
भ्राता-भार्या समेत रघुवर

मगर नहीं यह लाज़िमी
हर बार अयोध्या में
दिखे उत्सव
चमक उठे रंगीन आलोक

पता नहीं
जानते भी हैं
रामचरित के गायक
रघुवर की एक ही गाथा है
किन्तु अयोध्या की
अनेक व्यथा गाथाएं होती हैं।

पट्टी खोल दो गांधारी

तुम्हें कहकर देवी गांधारी
चुप रहा था व्यास
किन्तु मेरी मासूम बिटिया
तुमसे करती है घृणा
तुम्हारे विवेक पर
लज्जित अनुभव करती है
और कहती है
जिस क्षण तुमने
इन आंखों पर बांधी पट्टी
उसी क्षण रचा गया था
कुरुक्षेत्र का महासमर

शताब्दियां बीत गई हैं
मगर तुम अभी ज़िन्दा हो
एक बात मगर पूछूं
कैसा आदर्श यह अन्धापन
कौन सा धर्म अंधेपन का समर्थन

ठंडा है दर्पण
और उदास है खिड़की
और उस खिड़की में बंदी बना
तुम्हारा आकाश
पेड़, चिड़िया, मौसम
और मेरी बेटी भी है उदास

सुनो गांधारी !
अब खोल दो अपनी पट्टी ।

ठूंठ

ठूंठ हूं मैं
खो चुका हूं आस्था
अपनी निष्क्रिय जड़ों में
किन्तु आस-पास जब हवा में
नन्हे-नन्हे पौधों को
झूमते हुए देखता हूं
भूल जाता हूं मैं कि ठूंठ हूं
और मौसम पर भरोसा करने लगता हूं

ठूंठ हूं
फिर भी जानता हूं
वसंत
तुम मेरे पास आओगे
मुझे सहलाओगे
कुछ देर दुलारोगे
और निष्प्राण समझकर
आगे निकल जाओगे

ठूंठ हूं मैं
ठूंठ ही रहूंगा
फिर भी वसंत
तुम्हारा कृतज्ञ हूं
और तुम्हारे सामने नत हूं
बस इतनी प्रार्थना करता हूं
पल रहे हों सांप जहां
मत खिलाना हरी-हरी घास वहां ।

कथा अंगार की

कथा अंगार की कहें क्या
आग में जो तपे हर पल
व्यथा उनकी कहें क्या !

यह बात पुरानी
अब मगर
जो न धधक सकें
न भड़क सकें
लपट तो क्या
लौ भी न बन सके
वे आदमी हों कि अंगारे
कथा उनकी कहें क्या
व्यथा उनकी कहें क्या !

नींद के घोड़े पर

नींद के घोड़ें पर
सवार
घूमता रहता हूं
किसी सम्राट-सा
हरे-हरे वन

नहीं जानता
क्या इसी तरह
दूसरों के लिए भी
नींद घोड़ा बन जाती है

जानता हूं इतना
नींद में चाहे
हम बनें सम्राट
या सुकरात
लेकिन दिन हम सबके लिए
लकड़हारे-सा उपस्थित होता है
जिसके सामने
हम सब बन जाते हैं पेड़।

धूप

उतर ओ धूप
हाथ में चाबुक लिये
मेरे भीतर उतर
और उन सब घोड़ों को
कहीं दूर भगा
जो मेरे समस्त आक्रोश को
हिनहिनाहट में बदल जाते हैं

उतर ओ धूप
हिचकिचाहट मत कर
क्रूर बन
और धुन
निर्ममता से धुन
मेरी पीठ से लगे
तकिये की वह पिचपिची रुई
जो मुझे नींद की सुरंग में
धकेल देती है

उतर ओ धूप
मेरी वाणी में उतर
मेरी सांसों से गुज़र
मेरे शब्दों की पीठ थपथपा।

खिड़की का भरोसा

सहन नहीं हो पाया
जब खिड़की से
उस नन्ही लड़की का रोना
तो बुला ही लिया
चांद, बादल, हवा को

चांद ने आकर
उस नन्ही लड़की का मस्तक चूमा
बादल पी गया
उसकी सारी धूप
हवा ने उसकी शिराओं में
फूंक दी खुशबुओं की नदी

तब उस नन्ही लड़की की
आंखों में फूटा
हंसी का बीज
आलोक का झरना
और वह कमरे में ही
छोड़कर
अपने सारे खिलौने
निकल पड़ी पापा के घर से
साथ लिये केवल
खिड़की का भरोसा।

शृंगार करती औरत

शृंगार में रत औरत
कुछ भी नहीं देखती
न छत
न पैबन्द
न आंसू

कुछ भी नहीं सुनती
न चीख, न आहट

शृंगार में रत औरत
आईने में
अपने चेहरे से
बहुत दूर चली जाती है
और लौटकर
हर बार जान जाती है
कभी किसी को दे नहीं सकता
अपनी पसंद का चेहरा
यह आईना

तो सुन
शृंगार में रत औरत
ज़िन्दगी जीना
आईने में भटकना नहीं होता
आईने से निकलना होता है !

बर्फ़ पर नंगे पांव

मेरी नींद की घाटी में
अक्सर एक सपना
लौट आता है

बच्चे के
खिड़की से बाहर
बर्फ़ देखने से आरम्भ होता है
मेरा यह सपना
कलैंडर की सीढ़ी से
कितने वर्ष फिसल जाते हैं
कुछ पता नहीं
मगर वह बच्चा
बराबर देख रहा होता है बर्फ़
यहां तक कि उसकी आंखों में
जाड़ा अपना स्थायी घोंसला
बना लेता है

उस बच्चे के सपने में
कोई मां दूध नहीं पिलाती
कोई पिता
स्नेह का हाथ नहीं फेरता
फिर भी उसकी देह पर
यौवन बबूल की तरह
खिल जाता है
दृश्य बदल जाता है

बच्चे की जगह खिड़की पर
एक चेहरा दढ़ियल

बर्फ़ निहारते दिखाई देता है
उसके चेहरे पर
काल
बुढ़ापे के स्कैच
बना रहा होता है
धीरे-धीरे वह चेहरा दढ़ियल
खिड़की से कूदकर
बर्फ़ पर नंगे पांव
चलने लगता है
पहले धीमा
फिर तेज़
और फिर दौड़ने लगता है
अपने ही पदचिह्नों को
रौंदता हुआ
और अंततः गिर जाता है
वहीं बर्फ़ पर ढेर हो जाता है

घटनास्थल पर कुछ लोग जमा होते हैं
अर्थी को कंधा देने
वह शव के निकट पहुंच जाते हैं
और चेहरा देखकर
आश्चर्यचकित हो जाते हैं
और समवेत स्वरों में
बुदबुदाते हैं
यह क्या हम किसी घोड़े की अर्थी को
कंधा देने नही आए थे

दृश्य फिर बदल जाता है
खिड़की पर फिर एक बच्चा
हमारे ही बच्चों जैसा
बर्फ़ निहार रहा होता है
और बीच-बीच में
आईने के सम्मुख
खड़ा होकर

हिनहिनाने का अभ्यास करता
दिखाई देता है

धीरे-धीरे धुंधलाने लगती है आंख
और नींद की घाटी में
यह पौ फटने का समय होता है।

फरार फूल

घर के थोड़े से छत के नीचे
कुछ फूल तोड़ना चाहते हैं
अपने गमले
प्रत्यक्ष लेकिन
पत्ती-पत्ती में
झरती है सुगंध

कभी-कभी ये फूल
गमलों से बाहर—दीवारों के पार
देखने लगते हैं
और सूंघने लगते हैं हवा में मिला जहर
डर जाते हैं फूल
लौट आते हैं
अपने-अपने गमलों में
केवल एक फूल नहीं लौटता

कहते हैं कभी-कभी
रात के अभेद्य सन्नाटे में
वह फरार फूल
खिड़की दरवाज़ों की सांकलें
खड़खड़ाता है
और चिल्लाता रहता है—
होशियार !
खबरदार ! !

मेरे गांव की नदी

यह सच है
इस नदी ने
मुझे कभी नहीं दिया सुख
नौकायन का
मगर इसकी प्रबल धार ने
सुदृढ़ किएमेरे पांव
मैं ऋणी हूँ इस नदी का ।

मेरा शहर

मैंने देखा
कुछ खरोंचें
मेरे बदन पर उभर आई हैं
और खुद से पूछा
क्या मेरे शहर के
नाखून उग आए हैं ?
जब सवेरे सूरज
अपनी किरणों का बिगुल बजाता है
मेरे इस शहर में
युद्ध का-सा कोहराम मच जाता है
घर-शिविरों के द्वार खुल जाते हैं
चीखों और चीलों से
आकाश छा जाता है

सुना है मेरे इस शहर में
हर शाम मरघट सुलगता है
सुना है यह शहर हर रात
दर्द में सुलगता है

मैं जानता हूं
विशाल वक्षस्थल और
देवदार-सा ऊंचे कद वाला
मेरा यह शहर
भीतर ही भीतर कितना खोखला
हो चुका है
और बाहर इसका पाउडरपुता चेहरा
एक वेश्या-सा कितना छकाता है
मैं जानता हूं
और यह भी जानता है…।

दिल्ली

नदी किनारे
किसान
बकरी को
ले जा रहा था चराने
कि पुल पर अचानक
बोल पड़ी बकरी ।

मालिक !
मुझे तुम ले चलो दिल्ली
कुछ थोड़ा सा
मैं भी तो चर लूँ
राजघाट का हरापन !

एक ज़रूरी एलान

किसी अजनबी को
घर के भीतर
घुसने मत दीजिए
क्या पता वह तुम्हें चुभो दे
विचार की ऐसी तेज़ नोंक
कि आप एकदम भूलकर घर-परिवार
निकल पड़ें सड़क पर
और चिल्लाना आरम्भ कर दें।
हत्यारो ! हंसते हुए हत्यारो !

किसी भी अजनबी को
घर के भीतर
घुसने मत दीजिए
किसी आहट पर
कोई ध्यान न दें
किसी भी खटखटाहट पर
चुप रहें
वरना आप सुरक्षित नहीं हैं

हां ध्यान रहे
खुली हुई खिड़कियों से
कभी भी यह मौसम
भरमा सकता है आपको
इसलिए बन्द रखें खिड़कियां तक

संकट की इस घड़ी में

हम आपके लिए
नये-नये मनोरंजन लेकर
उपस्थित होते रहेंगे ।
धन्यवाद ।

पिता तुम एक हथौड़ा हो

पिता तुम एक हथौड़ा हो
कि जिसके नीचे
पूरा परिवार
बर्तन सा पड़ा रहता है चुप

अक्सर तुम्हारी रीछ आदतों से
घर की दीवारें
गिर-गिर पड़ती हैं
और हम टूटी छत के टुकड़े लिये
नींद में उन्हें छिपाने का
प्रयत्न करते हैं
मगर तुम नींद में हमारी
उतार लेते हो अपने जूते
जिनमें भरा होता है तुम्हारा गुस्सा

पिता तुम कोई पहाड़ नहीं
न ही कोई तेज़ दरिया
बस एक ऊंची दीवार हो
जिसे हम लांघने का प्रयत्न करते रहते हैं।

रोज़

हम सब डर के साए में
जीवन बिता रहे हैं

हमारी रीढ़ की हड्डियों पर
रोज़ एक गर्म लोहा रखा जाता है
रोज़ किसी अदृश्य नली से
हमारे भीतर कायरता फूंकी जाती है
रोज़ हम चीखते हैं सड़कों पर
और सारा विद्रोह
औरतों के जिस्म पर उड़ेल देते हैं

सूरज को आकाश के जंगल से
भेड़िये की तरह निकलते देख
हम भी घरों से निकलते हैं
झुककर साहब को सलाम करते हैं
चींटियों की तरह
फाइलों पर रेंगते हैं
कुछ शक्कर ढूंढ़ते हैं।

रोज़ एक उदासी
हमारे घरों में
बिल्ली की तरह
चक्कर काटती है
रोज़ रात आती है
अंधकार में कुछ शहद-सा घोलकर
हमें सम्मोहित करती है
रोज़ हम परिचित उस जिस्म को
टटोलते हैं
रोज़ सुबह होती है···

सेव

सेव
कितना सुखद है
तुम्हारे बारे में यह सोच लेना
कि छोटी-बड़ी दुकान पर
तुम अपना रंग नहीं बदलते
और नहीं प्रतिष्ठानुसार अपना स्वाद !

देखो, कितना भला लगता है
घृणा की लपटों के बीच
यह सोच लेना कि फलते समय
तुम नहीं सोचते किसी सम्प्रदाय विशेष के बारे में
और सदा अपने भीतर
स्वाद भरते रहते हो
यह जानते हुए भी कि एक दिन
यही अधिक स्वाद
आदमी और चाकू की नीयत
बिगाड़ कर
तुम्हें फांक-फांक कर देगा
लेकिन तुम हो कि निर्भय
अपने भीतर स्वाद भरते रहते हो।

लेकिन कभी-कभी तुम भी हो जाते हो
कितने निराश
जब कोई भूखा बालक
या पिता उसका
या बहन उसकी
ललचाई जीभ से
तुम्हें देखती भर है

और स्वाद तक पहुंचने से पहले ही
छिलके पर दम तोड़ देती है
उनकी इच्छा पर
तब तुम कितने लज्जित महसूसते हो
केवल उस एक बार !

इन दिनों

इन दिनों ज़िन्दगी जीना
उस बच्चे-सा लग रहा है
ड्रिल करते-करते जिसकी पतलून फट गई हो
जबकि समय किसी मुस्तंड लड़के के हाथों
बजते बैंड जैसा लग रहा है

वर्षा में भीगे किसी छाते सा
जिसे चूहों ने कुतर लिया हो
इन दिनों ज़िन्दगी जीना
कुछ ऐसे ही लग रहा है

कल शाम एक हादसा
टहलते-टहलते मुझसे टकरा गया
और मैंने महसूस किया
सड़क के दोनों ओर फसल कटे खेत
एक-एक कर मुझमें प्रवेश कर गए
और अपने बेशुमार ठूंठ मेरे भीतर छोड़कर चले गए
मैं सोचता रहा
क्या इन दिनों ज़िन्दगी जीना
अपने भीतर ठूंठ महसूस करना नहीं होता

मैंने पूछा राह चलते उस किसान से
जिसकी शक्ल बलराज साहनी से कितनी मिलती-जुलती थी
वह हाथ से टोपी पकड़
घूरता हुआ मेरी बगल से गुज़र गया
मैं बुदबुदाता रहा :
क्या इन दिनों किसी से सवाल पूछना
उसकी टोपी उतारना होता है ?

एक दिन अचानक

जब हम प्रेम के बारे में
सोच रहे होते हैं
कुछ बीज कपास के
हमारे भीतर बिखर जाते हैं
ऋतुएं
अपनी ममता के उजाले-अंधेरे में
इन बीज-कणों को
पाल रही होती हैं
और हमें कुछ भी पता नहीं होता

एक दिन अचानक
लहलहाने लगती है कपास
और झूमने लगता है मन
तब पहली बार हमें
अपने भरे होने का अहसास होता है !

जब तक हम प्रेम के बारे में
अधिक गहराई से
सोच रहे होते हैं
हमारे भीतर कपास चुनी
जा रही होती हैं/और हमें
हवा की थपकियों के सिवा
कुछ भी अनुभव नहीं होता

एक दिन अचानक
हम अपने को
बुनकर के करघे पर
देखने लगते हैं कपड़े में तब्दील होते हुए।

मुर्गी-घोड़ा सम्वाद

और मुर्गी को
पूरा होने लगा था विश्वास
कि फिर रहे हैं उसके दिन
भला क्यों नहीं होता
पुराने उस दड़बे की जगह
बन जो गया था उसके लिए
नया जालीदार दड़बा
दानों में भी कुछ होने लगा था इज़ाफा
और फुर्सत के समय
मालिक भी प्यार से
था लगा हाथ फेरने

मुर्गी खुश थी
आश्वस्त थी अपने भविष्य से

मुर्गी के पास ही
बंधा करता था
एक बेचारा घोड़ा
दिन भर दौड़ने के बाद
बड़ी कठिनता से
भूल पाता था वह
लोहे का स्वाद

घोड़ा कम बोलता था
मुर्गी वाचाल थी
घोड़ा
भोजन के तुरन्त बाद
सो लेता था
मुर्गी दड़बे में ही

अक्सर टहलती रहती थी
(क्योंकि स्वास्थ्य के प्रति
वह बहुत अधिक सचेत थी)
घोड़ा अपने मालिक से घृणा करता था
मुर्गी अपने अंडों से उसे रखना चाहती थी खुश

एक रात
मुर्गी ने घोड़े को छेड़ा
बोली—
"घोड़े बाबा,
तुम्हारे मुंह में
कितनी सुन्दर लगाम रहती है
और दिन भर
तुम कितने सुन्दर लोगों को करीब से देखते हो
और मैं कितनी भाग्यहीन
थोड़ा इधर-उधर हो-आ के बस खाती ही रहती हूं दाना
भला तुम्हारे मुकाबिल मेरा भी यह कोई जीना हुआ"

घोड़ा समझ गया
मुर्गी की बातों का सार, बोला—
"सुन मुर्गी रानी,
कितना अच्छा लगता है जालीदार दड़बे में रहना
और अंडे देना
और वज़न बढ़ाना
और एक रोज़ चाकू के साथ घुल-मिल जाना
मैं मगर घोड़ा नमकहराम
खरखरे के समय भी घूरता रहता हूं
अपने मालिक को
देखता रहता हूं स्वप्न
अपनी मुक्ति का
पढ़ता रहता हूं नमकहराम कविताएं
सुनकर मुर्गी कुछ सोच में पड़ गई
पास ही घोड़ा लगा खुरचने धरती
और सोचता रहा
कोई भी मौसम हम घोड़ों के अनुकूल क्यों नहीं आता ?

आंसुओं का नमक

नदी
मेरे आंसुओं का नमक
समन्दर तक ले सकोगी ?

पता नहीं
उन्माद के किन क्षणों में
मैंने समन्दर से किया था वायदा
कि कोई अमूल्य भेंट दूंगा

क्या पता तब समन्दर ने
मेरा मज़ाक भी न उड़ाया हो

किन्तु सुनो नदी
समन्दर को
मेरे आंसुओं का नमक देते समय
लज्जित मत होना
और यह ज़रूर कहना
मेरे बच्चे
उसे देखने की बहुत ज़िद करते हैं
और मैं फिलहाल उन्हें
अपने बचपन की पुरानी एटलस
दिखा-दिखाकर टाल रहा हूं
जिस पर तुम समन्दर का रंग भी
नीला न रहा

नदी
मेरे आंसुओं का नमक ले सकोगी
समन्दर से कह सकोगी मेरी बात

नगाड़ा

नगाडे पर
मढ़े गए चमड़े सा
तुम हमेशा-हमेशा पिटते रहोगे
और कतार में खड़े बच्चे
चमड़ी उधेड़ जाने तक
कसरत कर रहे होंगे

फिलहाल कोई डर नहीं
अभी नगाड़े पर
केवल बाप पिट रहा है
और बेटा
पीठ पर लिये बस्ता
निश्चिन्त स्कूल जा रहा है

एक दिन सुनकर
अपने पिता का दुखद समाचार
वह भी नगाड़े पर
मढ़ दिया जाएगा
और हमेशा-हमेशा के लिए पीटा जाएगा
उसके बाद
उसका बेटा
और उस बेटे का बेटा
और उसके बेटे के बेटे का बेटा
...

मैं पूछता हूं
क्या कभी खत्म नहीं होगा
नगाड़े पर
आदमियों का मढ़ा जाना ?

नाप

नई पोशाक बनवाने
मैं दर्जी के पास गया
वह लिये हाथ में फीता
कभी मुझे
कभी कपड़े को नापता रहा
फिर बोला—
क्या बात है
तुम्हारा नाप इतना क्यों
गिर रहा है ?

मैं डर गया
उस स्त्री की तरह
जिसने देखा हो स्वप्न में
अपना विधवा होना

कुछ देर डर और अंधेरे के बीच
झूलता रहा मैं
फिर सोचा
इस कमबख्त दर्जी से
कह ही दूं/कि इस नाप में
मेरा कुछ भी तो शामिल नहीं
न मेरी बांहें/न मेरा दिल
न मेरा वक्षस्थल
न मेरा पुंसत्व
कि इस नाप में मैं कहीं नहीं हूं
मगर मैं कह बैठा
बटन अच्छी तरह टांक देना
जल्दी उखड़ जाते हैं !

पतझर : दो कविताएं

(१)

एक नटखट बच्चा
पतझर से लड़ना चाहता है
उसे पीटना चाहता है
और बस्ती से बहुत दूर
उसे भागते हुए देखना चाहता है
हर बार मगर वह नटखट बच्चा
अपने पापा से पीटा जाता है
रुलाया जाता है
धमकाया जाता है
अब वह नटखट बच्चा
पतझर और पापा
दोनों से लड़ेगा।

(२)

पतझर ने उस पेड़ के कान में
क्या कहा
कोई नहीं जानता
लेकिन उसके बाद
वह पेड़
अपने साथी पेड़ों से
यह कहते सुना गया
कि पतझर उसका गहरा दोस्त है

अब इस भयानक जाड़े में
वही पेड़ सबसे अधिक रो रहा है
और बाकी सारे पेड़ उसे चुप कराने का
प्रयत्न कर रहे हैं।

लेटर बॉक्स

मेरे भीतर
मित्रता के अनेक सम्बोधन हैं
जिन्हें मैं तुम्हारे हवाले करना चाहता हूं

मेरे भीतर
अनगिनत चिट्ठियों के पन्ने
फड़फड़ा रहे हैं
जिन्हें मैं तुम्हें सौंप देना चाहता हूं

मेरे भीतर
बर्फ से भीगी सुगंधें
बाहर निकलने की राह देख रही हैं
जिन्हें मैं तुम्हारे भीतर
डाल देना चाहता हूं

मुझे भरोसा है
ताले में बन्द
हमारे सम्बोधन
हमारी चिट्ठियां
हमारी सुगंधें
पहुंचा दोगे तुम एक दिन
अपनी तमाम सही जगहों पर

विस्फोटक ध्वनियों के बीच भी
तुम हो जब तक सही-सलामत
इस दुनिया को
केवल एक लेटर बॉक्स के बल पर भी
जीता जा सकता है।

मृत्यु-लेख

नहीं चाहा मैंने
रख देना
इतिहास के सीने पर
अपनी स्मृतियों का बोझ

नहीं चाहा मैंने
अपने लिए बनवाना
कोई पट संगमरमर का
जो मृत्यु के गवाह में
सहता रहे अनावश्यक
मौसम की फटकार

नहीं चाहा मैंने
भोगूं ज़िन्दगी कुछ इतनी ज्यादा
कि निर्लज्ज होकर कह सकूं—
"मैं मरूंगा सुखी
मैंने जीवन की धज्जियां उड़ाई हैं।"

चाहा
बस चाहा मैंने
सूरज की गवाही में
आंधियों तक पहुंचाना यह बात
मैं मरूंगा नहीं उदास
कि हरी घास की पत्तियों सा
जिया है मैंने जीवन साधारण!

बहनें, हां बहनें

जब पिता
बहनों से ही प्यार करने लगते हैं
जब पिता
बहनों पर ही
भरोसा करने लगते हैं
जब पिता
बहनों के विरोध में
सुनना नहीं चाहते कोई भी बात
तब कितना कचोटने लगता है मन को
मां का घर में
अनुपस्थित जैसा होना

बहनों ने
आपस में ही धागा बांटा
एक-दूसरे को ही
उन धागों से बांधा
बहनों ने समृद्ध किया
एक-दूसरे को
अपने सामर्थ्य में
मगर
कितना अकेला पड़ जाता है
उनका भाई

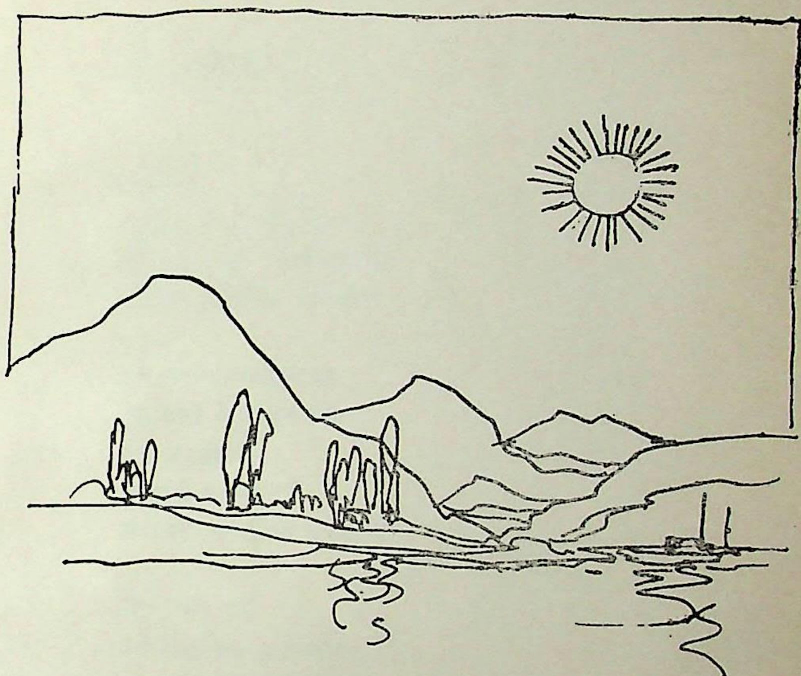
बहनें
भाइयों की चाबी होना चाहती हैं
बहनें
भाइयों को अपने निकट

उड़ते हुए देखना चाहती हैं
बहनें सचमुच
बाबुल की चिड़िया होती हैं
जो जीवन भर
मायके की खिड़की पर
अपना अधिकार
जताए रखना चाहती हैं

एक दिन मगर
सोचने लगती हैं बहनें
पत्थर हो गया है उनका भाई
और वे होने लगती हैं नाराज
धीरे-धीरे
यह जाने बिना
कि एक अकेले हरे पत्ते से
कहीं लड़ तो नहीं रहा है
समय की रेत के खिलाफ
उनका भाई

कहावत का कवच पहने
कहता है पिता
बहनें मक्खन होती हैं

हां, होती हैं
कहता है गुस्से में भाई
लेकिन तब तक
जब तक
कि उनके विरोध में
नहीं बोलता भाई।



कश्मीर : कुछ स्मृतियां

वितस्ता

कहते हैं
तुम्हारा जल नीला था
और तुम अपने नीले जल में
बर्फ़ को निमन्त्रण देती थीं

तुम अपने जन्मदिन पर
दूर दिलों के भीतर तक
तैरा करती थीं
तुम्हारी कल-कल में
सरस्वती की वीणा बजती थी

फिर पता नहीं
मेरे जन्म तक आते-आते
तुम कहां खो आईं अपना रंग

क्या तुम्हें पता भी है
कि तुम्हारे खाकी जल में
छलांग लगाकर अनगिनत बार
आत्महत्या कर चुका हूं मैं

तुम्हारे-मेरे सम्बन्धों की
यही एक दुखद त्रासदी है
कि मैं भूल नहीं पाता हूं
बुरे दिनों में भी
तुम्हारा नीला रंग !

जम्मू : १२ मई; १९९१

बर्फ पर लहू का रंग

आसमान साफ़ है
धूप की चमक से
नहा रहा है सारा शहर
मगर मेरे मन को
बादलों ने इस कदर
ढक लिया है
कि किसी भी समय
मेरे भीतर पड़ सकती है बर्फ
बचपन के दिनों जैसी
और मैं इस बर्फ़ की उज्ज्वलता से
धो डालूंगा
अपने विचारों की सारी सिलवटें

सालों से अपने अन्दर
धरती का जो हिस्सा
छिपा रखा है मैंने
मैं उस हरियाली से ही तो
जी रहा हूं इस शहर में
जहां मेरी पहचान
सिर्फ़ एक विस्थापित की है

मेरे पास कुछ भी तो नहीं है
हिंसा के प्रत्युत्तर में
सिवाय बर्फ़ के
और मैं अपने भीतर की बर्फ़ सड़कों पर
प्यार भरी हथेलियां लिये
लोगों के घर-द्वार
खटखटाते हुए

दोस्तों की बेशर्म चुप्पी
तोड़ने का प्रयत्न करता हूं

वितस्ता, चिनारों, झीलों की उदासियों को
आंखों में भरकर
लहूलुहान हुई बर्फ़ पर
घंटों रोता हूं मैं
सोचता हूं मेरी आत्मा एक परिंदा है
और सारी घाटी एक घोंसला है मेरे लिए
जिसे गोली के डर से छोड़ चुका हूं मैं
हवाओं के भरोसे
जिन्हें अच्छा लगता हो बर्फ़ पर लहू का रंग
वे नहीं जानते
वे अपने सौन्दर्य-बोध से मेरे कश्मीर के सूफी-सीने में
कितनी हत्याएं एक साथ करते हैं

आसमान साफ़ है
धूप की चमक से नहा रहा है सारा शहर
और इस बार मेरे भीतर भी उतरने लगी है धूप
पिघलने लगी है बर्फ़
फूटने लगे हैं झरने
और देखते ही देखते गर्जने लगी हैं नदियां
कल तक जो चुप थी
मगर मैं भूल चुका हूं नदियों की कल-कल
क्योंकि मैं इतना डरा हुआ हूं
नदियों तक को अपने खिलाफ़
षड्यन्त्र में शामिल समझता हूं
मैं नहीं जानता
निर्वासन का चोला पहनकर
कब तक रेंगना होगा देश के नक्शे पर
पर जहां भी रहें हम
हमारे सर के ऊपर सदा मौजूद होगी
वही एक ढलान छत
आंगन में बर्फ़ फेंकती हुई !

जम्मू : २५ जून, १९९१

मै हूं

उम्हें मेरे घाव
इतने बड़े दिखाई देते हैं
कि वे ढक लेते हैं उन्हें
एक काले कम्बल से
वे भर देते हैं
मेरे घावों में इतना अंधेरा
कि दिखाई ही न दे

वे चाहते हैं
उनके लिए मैं हर समय
कैमरे के सम्मुख
ठिठुरता ही दिखाई दूं
मगर जिन्हें
खबर से अधिक
प्रिय हो सच
डुबो कर मेरे लहू में
अपनी कलम
लिख दें
मैं नहीं हूं
एक ठिठुरता हुआ आदमी
मैं हूं
गुम होती एक नदी
गायब होते फूलों की एक सम्पूर्ण जाति
डाक टिकट से सम्मानित
हांगुल की आवाज़।

जम्मू : १२ जुलाई, १९९१

एक अधूरी कविता

विस्थापन में जिन दिनों
मैं अधिक डरा हुआ था
एक सुन्दर स्त्री
मुझसे प्यार करने लगी थी

यह जानकर
मैं कुछ और डरा
फिर हुआ उदास
कहा स्वयं से—
यह तुम्हें क्या हो गया है
गोली के बाद
अब सौन्दर्य से भी
डरने लगे हो।

जम्मू : १५ अगस्त, १९९१

निर्वासन में सेब की याद

कैसा अद्भुत है
मैंने दर्पण में जो झांका
मुझे चेहरा नहीं
दिखाई दिया अपना गांव

दौड़ आई एक नदी
गले मिली मुझसे
बहुत रोई
और मेरे कंधों पर
रख गई कुछ घायल लहरें
एक पेड़ लंगड़ाता हुआ
मेरे पास आया
अपने पत्तों से
सहलाता रहा मेरा सारा बदन
हवाओं ने पल भर में
बुहार लिया
धूल भरा मेरा मन
और पकने लगी मेरे अन्दर
एक ऋतु
स्वाद में इतना डूबा मैं
अपने ही बगीचे का सेब हो गया
कब चेता नहीं पता
कहा किन्तु दर्पण ने मुझसे
निर्वासन में सेबों को
याद मत कर
दुःख पाएगा !

जम्मू : ३० अगस्त, १९९१

बर्फ के पुल पर

बर्फ के पुल पर
धुंध ओढ़े हुए
मैं नाप रहा हूं शून्य
मेरे सामने जम गई है एक पूरी नदी
ठहर गई हैं नौकाएं तमाम
और मेरी चादर भी कितनी झीनी हो गई है
जिसे लपेटकर कभी इस छोर, कभी उस छोर
भागने का प्रयत्न करता रहता हूं मैं
मगर इस समय मैं कहां भाग सकता हूं
जब हवाएं भी मेरी मित्र नहीं
उजाड़ती रहती है मेरे हर अलाव की कोख
इस समय जब कोई भी ऊष्णता
मेरे निकट नहीं
सिवाए अपनी गर्म सांसों के
कहां भाग सकता हूं मैं ठंडे पैरों के सहारे
उफ, मेरी उम्मीद के जूतों का नाम भी
कितना छोटा है मेरे पांव से

पता नहीं
इस उदास दिखते आसमान के छिद्रों से
कब उतरे धूप
पर जब भी उतरे धूप
और पुनर्जीवित करे प्रवाह
आओ तब तक
अपने जीवित होने के प्रमाण में
इस ठोस जमी हुई बर्फ को
नाखूनों से खुरचते रहें हम।

जम्मू : ११ फरवरी, १९९२

एक विस्थापित गर्भवती स्त्री

जाड़े की बर्फ़ रातों में
तुम मेरे गर्भ में
चन्द्रमा-सा उग आए
मेरे बच्चे
मेरी देह की नमी में
यह किसी फूल के खिलने की
पहली आहट थी

मैंने मांगी तुम्हारे लिए
मेरे बच्चे
बर्फ से उसकी सुंदरता
चिनार से उसका कद
झीलों से उनकी गहराई
सेबों से उनकी मिठास
मगर मैं यह कहां जानती थी
कि मैं जिस धरती के टुकड़े पर
संवार रही थी तुम्हारा रूप
वह इस तरह छिन जाएगा एक दिन

तुम मगर हो मेरे भीतर
धड़कते हुए
धरती के छिन जाने के बाद भी
यही बहुत है मेरे लिए

तुम आओगे, मेरे बच्चे
सूंघते हुए अपनी मां की देह में
छीनी गई धरती की सुगन्ध

तुम आओगे
मगर मैं तुम्हें पालने में नहीं
इतिहास की किसी सख्त चट्टान पर
रख दिया करूंगी
मैं नहीं गाऊंगी तुम्हारे लिए
लोरियां
मैं तुम्हारी नींद के धागे से बंधी
सभी तितलियों के पर
नोंच डालूंगी
कि चाहती हूं मैं
तुम इस धरती पर निर्भय होकर
चल सको
मेरे बच्चे
मैं तुम्हारी नन्ही-नन्ही आंखों में
डालती रहूंगी
बूंद-बूंद सतीसर
कि कभी नहीं भूल पाओ तुम
अपनी आबोहवा।

जम्मू : १५ फरवरी, १९९२

दूरदर्शन पर बर्फ

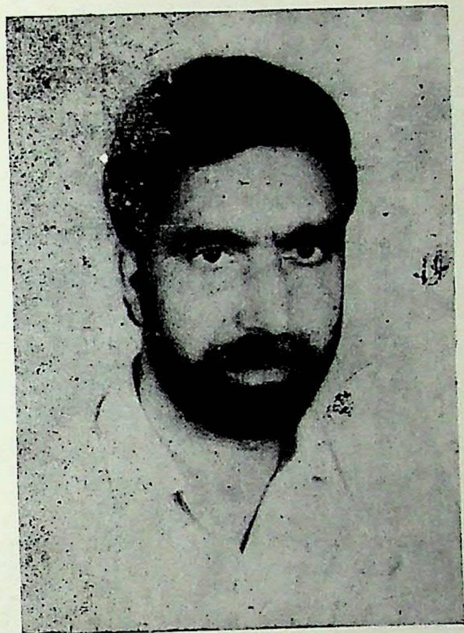
पूरा आधा मिनट
बर्फ़ को गिरते हुए
दिखाया दूरदर्शन ने

बोली मां
दिखाई नहीं देते
अपने जैसे मकान
अपने जैसे लिबास में
घूमते हुए लोग

मां ! कहा मैंने
यह नहीं है अपना वतन
यह रूस है
वही रूस
जहां कभी रहती थी
मेक्सिम गोर्की की मां

पर मैं शीघ्र संभल गया
सोचा
मैं यह क्या कह रहा था
मेरी मां किसी मेक्सिम को नहीं जानती
वह बस जानती है
हब्बाखातून को
और उसे ही गाती है
अपने एकांत के लयात्मक क्षणों में

जम्मू : १६ फरवरी, १९९२



महाराज कृष्ण संतोषी

जन्म : १५ जून, १९५४ को कश्मीर के एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में

शिक्षा : पंजाब विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम० ए०

प्रकाशन : 'इस बार शायद' (कविता-संग्रह)—१९८०

कश्मीर से विस्थापित होकर फिलहाल जम्मू के दूर-संचार विभाग में कार्यरत।



पल्लवी प्रकाशन

ए-३५, निर्माण विहार, दिल्ली-९२